और अंत में

हम किस ओर जाना चाहते हैं?

• दिनेश कर्नाटक

शिक्षा को जीवन का लक्ष्य मानने के बजाय उसका हिस्सा समझा जाए। आशय यह है कि शिक्षा को बच्चे के जीवन में बोझ के रूप में नहीं, आनंद तथा खुशी के रूप में प्रवेश करना चाहिए। जैसे उसके जीवन में खेल, मौज–मस्ती, नाचने–गाने तथा कथा–कहानी का प्रवेश होता है। अभी हमारी शिक्षा खोजने, जानने तथा बेहतर इंसान बनने के लिए नहीं होती है। अभी यह उस सार्टिफिकेट के लिए होती है, जिसे प्रस्तुत कर रोजगार पाया जा सकता है। सारी गड़बड़ यहीं पर है। जब सार्टिफिकेट ही पाना है तो सालभर दिमाग पर जोर क्यों डाला जाए ?

केंद्र में नई सरकार के आने के बाद से लगातार अखबारों में खबरें आ रही हैं कि कक्षा आठ तक बच्चों को न रोकने तथा दसवीं की बोर्ड परीक्षा को वैकल्पिक बना दिए गए प्रावधानों को वापस ले लिया जाएगा। इस संबंध में राज्यों के शिक्षा मंत्रियों तथा शिक्षा सचिवों के साथ केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री की मीटिंग के बाद निर्णय ले लिये जाने की बातें भी कही जा रही थी। यह बैठक हो चुकी है और उसमें इस तरह का कोई निर्णय नहीं लिया गया। अच्छा हुआ कि सरकार ने इस मामले में जल्दबाजी नहीं दिखाई। लेकिन अब फिर से अखबारों में राज्यों के शिक्षा मंत्रियों तथा सचिवों की भावना के अनुरूप कदम उठाए जाने की बात कही जा रही है। जाहिर सी बात है अधिकांश राज्य कक्षा आठ तक फिर से पास–फेल की प्रणाली को शुरू करना चाहते हैं। बल्कि कुछ राज्यों के शिक्षा मंत्रियों ने तो दो कदम आगे बढ़कर पांचवी तथा आठवीं की परीक्षा को फिर से बोर्ड परीक्षा में बदल दिये जाने की मांग की है।

देखना होगा कि केन्द्र सरकार इस पर क्या निर्णय लेती है। लेकिन यहां पर यह सवाल भी उठना चाहिए कि कक्षा आठ तक बच्चों को किसी कक्षा में न रोकने, बोर्ड परीक्षा को वैकल्पिक बनाने, नंबरों के बजाय ग्रेडिंग व्यवस्था को लागू करने तथा बाल मैत्रीपूर्ण परीक्षा की व्यवस्था को क्यों लागू किया गया ?क्या तब उठाया गया यह कदम गलत था ? इस कदम के पीछे क्या सोच थी ? हाल के दिनों में बिहार की बोर्ड परीक्षा में नकल के जो दृश्य दिखाई दिए हैं, उसके बाद एक बार फिर से हमारी परीक्षा व्यवस्था पर गंभीर प्रश्न चिह्न खड़े हो चुके हैं तथा इस पर गंभीरता से विचार–विमर्श की जरूरत महसूस होने लगी है।

अधिकांश लोगों को जिनमें शिक्षा से जुड़े हुए लोग भी हैं, लगता है कि कक्षा आठ तक फिर से पास–फेल शुरू करने से निचले स्तरों पर बच्चों की छंटाई हो जाएगी तथा दसवीं और बारहवीं का रिजल्ट बेहतर हो जाएगा। यहां पर यह भी ध्यान रखना होगा कि यही सोच तो भारत में अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था की नींव डालने वाले 'मैकाले' की भी थी। उसने भारत में शिक्षा के बारे में जो सिद्धांत सामने रखा उसे 'फिल्टरेशन थ्योरी' के नाम से जाना जाता है। यानी शिक्षा केवल समाज के संपन्न तबके को ही दी जाए बाकी लोगों तक यह छन–छनकर पहुंचे। तो क्या हम शिक्षा के सार्वभौमीकरण से कदम पीछे खींचकर एक बार फिर से 'गुलामी' के दौर की शिक्षा व्यवस्था की ओर लौटना चाह रहे हैं ?सवाल यह भी है कि शिक्षा का उद्देश्य क्या बच्चों की छंटाई करना या किसी भी सूरत में रिजल्ट का अच्छा आना ही है ?

सबसे पहली बात तो यह है कि विद्यालयी शिक्षा को जीवन का लक्ष्य मानने के बजाय उसका हिस्सा समझा जाए। आशय यह है कि शिक्षा को बच्चे के जीवन में बोझ के रूप में नहीं, आनंद तथा खुशी के रूप में प्रवेश करना चाहिए। जैसे उसके जीवन में खेल, मौज–मस्ती, नाचने–गाने तथा कथा–कहानी का प्रवेश होता है। अभी हमारी शिक्षा खोजने, जानने तथा बेहतर इंसान बनने के लिए नहीं होती है। अभी यह उस सार्टिफिकेट के लिए होती है, जिसे प्रस्तुत कर रोजगार पाया जा सकता है। सारी गड़बड़ यहीं

पर है। जब सार्टिफिकेट ही पाना है तो सालभर दिमाग पर जोर क्यों डाला जाए ?परीक्षा के समय नकल करके लिख दिया जाए। प्रमाण पत्र मिल जाएगा। काम खत्म !

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या' 05 ने कक्षा पांच, आठ तथा ग्यारहवीं के स्तर पर बोर्ड परीक्षा आयोजित करने की साफ मनाही की है। स्पष्ट है, उसका इरादा शिक्षा को उसके मूल लक्ष्य की ओर ले जाना होगा। 'नो डिटेंशन' तथा बोर्ड परीक्षा को फिर से शुरू करने का अर्थ है कि बच्चे फिर से फेल होंगे। परीक्षा तथा पाठ्यपुस्तक फिर से शिक्षा के केन्द्र में होगी। सीखने–सिखाने तथा ज्ञान निर्माण की चुनौती विद्यालय तथा शिक्षक के कंधों से उतर जाएगी। बच्चों पर फिर से परीक्षा का तनाव होगा तथा बच्चों द्वारा इस तनाव के चलते अप्रिय कदम उठाए जायेंगे। दरअसल, आठवीं तक फेल न करने का अर्थ यह नहीं है कि बच्चों की सम्प्राप्ति का आंकलन तथा उसका उपचार न किया जाए। दुर्भाग्य से इसका रास्ता हम नहीं निकाल पाए हैं। यह चुनौतीपूर्ण कार्य था। इसके लिए अतिरिक्त व्यवस्थाओं की जरूरत पड़ती। लेकिन यहां पर गौर करने वाली बात यह है कि जब हम पांच कक्षाओं को दो शिक्षक–शिक्षिकाओं के द्वारा पढ़वाते हैं तो सोचा जा सकता है, हम किस तरह की अतिरिक्त व्यवस्था कर रहे होंगे ? हम सबने मिलकर बच्चों का उचित आंकलन करने के बजाय उन्हें उत्तीर्ण कर दिया और ठीकरा शिक्षकों तथा 'नो डिटेंशन' व्यवस्था के ऊपर फोड़ दिया।

लेकिन 'नो डिटेंशन' का जो एक सबसे सकारात्मक पहलू मुझे नजर आता है, वह यह है कि वंचित वर्ग के बच्चों में कक्षा एक से आठ तक स्कूल छोड़ने की जो दर पहले थी अब उसमें बड़ा बदलाव आया है। बच्चा परीक्षा का दबाव न होने के कारण आठवीं तक स्कूल में ठहर रहा है। इसी बहाने कुछ न कुछ सीख रहा है। अब बच्चे नवीं–दसवीं में अधिक स्कूल छोड़ रहे हैं, क्योंकि यहां से कई बच्चों के लिए शिक्षा फिर से बोझिल हो जा रही है। अभी भी कई राज्यों द्वारा दसवीं की बोर्ड परीक्षा करवाई जा रही हैं। अभी भी हर साल अनेकों बच्चे परिणाम आने के बाद आत्महत्या के जैसे आत्मघाती कदम उठाते हैं। आशय यह है कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 ने शिक्षा में पैदा हो रही बीमारियों के इलाज के जो तरीके सुझाये थे वे भले ही दिखावटी तौर पर तो शिक्षा में आ चुके हैं लेकिन वे अभी शिक्षा का स्वभाव नहीं बन पाए हैं।

बच्चों को आरंभिक कक्षाओं में फेल न करने का निर्णय शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य की ओर लौटने की दिशा में उठाया गया बड़ा कदम था। यहां से हम एक बड़े बदलाव की इबारत लिख सकते थे। मगर ऐसा हो न सका। हमारी परीक्षा पद्धति की एक सबसे बड़ी खामी यह है कि यह बच्चे की याददाश्त की परीक्षा लेती है। उसके इतर अन्य पहलुओं पर इसका ध्यान नहीं जा पाता। जिसने किताब की बातों को रटकर उत्तर के रूप में लिख दिया वह योग्य तथा जो नहीं लिख पाया वह अयोग्य ! क्या याद करने की क्षमता किसी बच्चे का एकमात्र गुण होता है ? प्रत्येक मनुष्य में कई तरह की दक्षताएं होती हैं। छोटी उम्र में हम उन्हें पहचान नहीं सकते। हमारी शिक्षा की कमी यह है कि वह बच्चे की उन संभावनाओं को न तो पहचान पाती है और न ही उन्हें प्रोत्साहित कर पाती है। ऐसी स्थिति में हम किसी बच्चे को पाठ्यपुस्तकों के प्रश्नोत्तरों के आधार पर असफल होने का प्रमाण पत्र कैसे दे सकते हैं ?यह प्रमाण–पत्र कई बच्चों के लिए जीवनभर हीन भावना का कारण बन जाता है। जब शारीरिक रूप से कई तरह की बाधाओं से घिरा हुआ व्यक्ति अपनी बाधाओं पर विजय पाकर ऐसे–ऐसे कारनामें कर सकता है कि हम दांतों तले उंगली दबाने को मजबूर हो जाते हैं तो एक सामान्य बच्चे को अपने सीमित आंकलन से हम फेल कैसे कह सकते हैं ? राष्ट्रीय पाठ्यचर्या' 05 कहती है, "भारतीय शिक्षा में मूल्यांकन शब्द परीक्षा, तनाव और दुश्चिंता से जुड़ा हुआ है।" उसका मानना है कि मूल्यांकन को शिक्षा पद्धति को बेहतर बनाने तथा सीखने–सिखाने की प्रकिया में सहयोगी होना चाहिए। आगे वह स्पष्ट शब्दों में कहती है कि अगर कोई शिक्षा में गुणवत्ता चाहता है तो बच्चों का विभाजन कर उन्हें ऐसी श्रेणियों में डालना जिससे उनमें हीन भावना आ जाए। ऐसा बिलकुल नहीं होना चाहिए।

प्रत्येक विद्यार्थी अलग–अलग तरीके से सीखता है तथा उसके द्वारा अपने सीखे को प्रस्तुत करने का तरीका भी अलग–अलग होता है। इसलिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या' 05 मूल्यांकन के भी बहुविध होने की मांग करती है। वह हर विद्यार्थी से हर विषय पर समान स्तर की मांग को उचित नहीं मानती। उसका साफ कहना है कि विद्यार्थियों की प्रकृति एक–दूसरे से भिन्न होती है, इसलिए शिक्षण की पद्धतियां भी अलग–अलग होनी चाहिए। वह परीक्षाओं को स्मृति की जांच से हटाकर, व्याख्या, विश्लेषण और समस्या समाधान जैसी उच्चतर क्षमताओं की ओर ले जाना चाहती है। वह मौखिक परीक्षा तथा समूह कार्य मूल्यांकन को बढ़ावा देने की भी सिफारिश करती है। वर्तमान परीक्षा पद्धति में विशेषकर ग्रामीणों, गरीबों तथा सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के बच्चों में जिस तरह से असफलता की ऊंची दर देखने में आती है उससे लगता है कि संपूर्ण परीक्षा पद्धति पर गहरे विचार की जरूरत है। निश्चित रूप से ये वे सवाल हैं जिनसे हमें जूझना है तथा उनका समाधान निकालना है। हम यहां से आगे भले ही न जाएं लेकिन अगर इसे बेहतर बनाने की दिशा में काम कर सकें तो अच्छा होगा।

बात जहां से शुरू की थी, वहीं पर लौटते हुए यह सवाल उठाना लाजिमी लगता है कि शिक्षा को हम किस रूप में देखना चाहते हैं ? उसे हम रचनात्मक, लोकतांत्रिक तथा बालकेंद्रित बनाना चाहते हैं या उसके पुराने स्वरूप के अनुसार भेदभावपूर्ण, जड़तापूर्ण तथा परीक्षा केंद्रित बने रहना देना चाहते हैं। पहले विकल्प को चुनने का अर्थ है आगे की ओर जाना तथा दूसरे विकल्प को चुनने का अर्थ है पीछे की ओर लौटना ! उम्मीद की जानी चाहिए कि हम पीछे लौटने के बजाय आगे की ओर जाना पसंद करेंगे।